अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की मासिक पत्रिका

वर्ष : 52 अंक : 3 फाल्गुन-चैत्र वि.सं. 2081 मार्च, 2025 पृष्ठ-28 **RNI 43602/77 ISSN No.2581-981x**

आचार्य को विष्णु खरे आलोचना सम्मान

जाने-माने साहित्यकार-विचारक डॉ. नन्दकिशोर आचार्य को को 21 फरवरी को भोपाल के रवीन्द्र भवन में आयोजित कविता सम्मान समारोह में वनमाली सृजनपीठ द्वारा विष्णु खरे की स्मृति में स्थापित राष्ट्रीय विष्णु खरे आलोचना सम्मान प्रदान किया गया।

अज्ञेय द्वारा संपादित चौथा सप्तक में शामिल डॉ. आचार्य को साहित्य अकादेमी सम्मान, मीरा पुरस्कार, संगीत नाटक अकादमी सहित अनेक सम्मान मिल चुके हैं।

प्राकृत भारती, जयपुर में अतिथि लेखक के रूप में अहिंसा विश्वकोश तथा अहिंसा-शान्ति ग्रंथमाला के संपादक रहे डॉ आचार्य आजकल आइटीएम विश्वविद्यालय, ग्वालियर में ऐमेरिटस प्रोफेसर के रूप में लोहिया ग्रंथमाला पर कार्य कर रहे हैं।

डॉ आचार्य के अब तक बाईस कविता-संग्रह, आठ नाटक, ग्यारह साहित्य आलोचना की पुस्तकों के अलावा अहिंसा-दर्शन, गाँधी विचार, मानवाधिकार, शिक्षा और संस्कृति आदि पर अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है।

समिति में लेखिकाओं की गोष्ठी

प्रौढ़ शिक्षण समिति और राजस्थान लेखिका साहित्य संस्थान जयपुर ने मिलकर 23 फरवरी को एक लेखिकाओं की एक साहित्यिक संगोष्ठी का आयोजन किया जिसमें डॉ. रेखा गुप्ता की दो पुस्तकों - समय के निकष एवं भोर के उजास सी का लोकार्पण हुआ। 'समय का निकष' लेखिका के निबंधों का संग्रह है जबकि 'भोर की उजास' उनका कविता संग्रह है।

प्रमुख साहित्यकार, कवि और आलोचक डॉ. नरेंद्र शर्मा कुसुम ने कार्यक्रम की अध्यक्षता की।

राजस्थान लेखिका साहित्य संस्थान जयपुर की अध्यक्ष डॉ. जयश्री शर्मा ने संस्थान के 36 वर्ष पूर्ण होने पर सभी को बधाई देते हुए संस्थापिका नलिनी उपाध्याय का स्मरण किया।

डॉ. रेखा गुप्ता एवं चंद्रिका गोस्वामी जी अपनी रचनाप्रकिया पर बात की, जबकि डॉ. कंचना सक्सेना, उमा शर्मा, सुशीला शर्मा तथा रेनू शर्मा शब्द मुखर ने काव्य संग्रह की कविताओं का वाचन किया। कार्यक्रम का संचालन डॉ. आशा शर्मा ने किया।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो, दशकं धर्मलक्षणम् ।।
-मनुस्मृति

धैर्य, क्षमा, अपनी वासनाओं पर नियन्त्रण, अन्तरंग और बाह्य शुचिता, इन्द्रियों को वश मे रखना, चोरी न करना, बुद्धिमत्ता का प्रयोग, ज्ञान की पिपासा, मन वचन कर्म से सत्य का पालन और क्रोध न करना ये दस मानव धर्म के लक्षण हैं।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।। ऋग्वेद

अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की पत्रिका

वर्ष : 52 अंक : 3 फाल्गुन-चैत्र वि.सं. 2081 मार्च, 2025 मूल्य : पचास रुपये

क्र म

वाणी

3. मनुस्मृति

संपादकीय

5. महाजनी व्यवस्था का शिक्षा में प्रवेश

लेख

7. प्रौद्योगिकी व समतापूर्ण शिक्षा की चुनौतियां **– माधव चव्हाण**

9. भारत में शिक्षकों के व्यावसायिक विकास पर पुनर्विचार **– वार्या सिंह, सिद्धेश सरमा**

11. सोशल मीडिया पर दुष्प्रचार के खिलाफ एआई का उपयोग संभव **– टैड्डी रोज़नब्लूथ**

12. **व्याख्यान**

विस्मृति और दुरव्याख्याओं का समय **– अशोक वाजपेयी**

सम्मान

14. शीन काफ़ निज़ाम: फ़र्द से फ़िक्र तक **– आदिल रज़ा मंसूरी**

लेख

18. कला का प्रयोजन अनंत सांस्कृतिक उपक्रम **– हेमंत शेष**

20. लोक का लालित्य और शास्त्रीय लहरियां **– डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'**

23. **स्मृति शेष**

एक दिन में दो विभूतियों का जाना **– डॉ. देवदत्त शर्मा**

लेख

25. चुनौतियों का स्वागत करें! **– डॉ. ज्ञानवत्सल स्वामी**

26. अपने अंदर देखो **– डॉ. इयोनिस सिरिगोस**

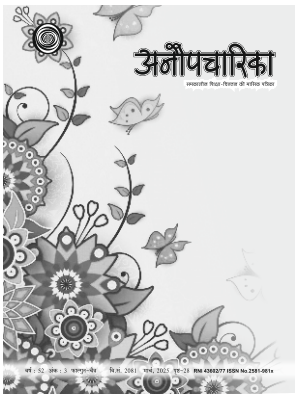

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7-ए, झालाना डूंगरी संस्थान क्षेत्र,
जयपुर-302004
फोन : 2700559, 2706709, 2707677
ई-मेल : raeajaipur@gmail.com
www.raea.in

संरक्षक :
श्रीमती आशा बोथरा
संपादक :
राजेन्द्र बोड़ा
प्रबंध संपादक :
दिलीप शर्मा

महाजनी व्यवस्था का शिक्षा में प्रवेश

भारतीय अभिजात्य वर्ग द्वारा बुर्जुआ आधुनिकता की स्वीकृति निष्ठाहीन और प्रतीकात्मक रही है। इसके अलावा, यह अभिजात वर्ग अब भी सार्वजनिक क्षेत्र में पुराने प्रतीकों और सामंती लोकाचार को पोषित करता है, जिससे एक अजीब तरह की संकरता पैदा होती है। हमारे देश में परंपरा को अस्वीकार करके आधुनिकता आकार नहीं ले पाती; बल्कि, पूर्व वाले और बाद वाले के साथ कुछ हद तक अजीब संश्लेषण के लिए जगह बनती है। भारतीय अभिजात वर्ग ने ऊपर की ओर गतिशीलता सुनिश्चित करने के लिए आधुनिकता को अपनाया है, जबकि आबादी का एक बड़ा हिस्सा इससे वंचित रहा है।

किसी भी आधुनिक समाज में विश्वविद्यालयों से औद्योगिक उत्पादन, संचार और मनुष्य के लिए उपयोगी वस्तुओं की खपत के लिए आवश्यक ज्ञान, अनुसंधान और कुशल मानव संसाधनों की आपूर्ति की अपेक्षा की जाती है। एक कल्याणकारी–लोकतांत्रिक समाज में सार्वजनिक विश्वविद्यालयों से समानता, स्वतंत्रता, न्याय और धर्मनिरपेक्षता को पोषित करने की भी अपेक्षा की जाती है। क्या भारत में सार्वजनिक विश्वविद्यालय इस कार्य को पूरा करते हैं? यह बड़ा सवाल पूछा जाना चाहिए।

विश्वविद्यालर उच्च शिक्षा के संस्थान होते हैं। उच्च शिक्षा का आशय वहां स्नातकोत्तर पढ़ाई, अनुसंधान और छात्रों में खोजने की प्रवत्ति का कौशल विकसित करने का होता है। छात्र की उच्च शिक्षा के लिए उसकी तैयारी स्नातक स्तर को पार करके होती है। उच्च शिक्षा की गंभीर तैयारी हर किसी की नहीं होती। मगर दुर्भाग्य से उच्च शिक्षा का जैसा सार्वजनीकरण हमारे यहां हुआ है उसमें सीखने, खोजने, अनुसंधान करने की प्रवत्ति और कौशल की बजाय सिर्फ कागज की डिग्री पाना ही अधिकतर छात्रों का लक्ष्य हो गया है। अब तो बाज़ार आधारित अर्थ व्यवस्था में उच्च शिक्षण संस्थाओं का ऐसा घना जंगल फैल गया है कि अब तो कागज पर छपी हुई डिग्रियां फ्रेम करा कर दीवार पर टांगने का रिवाज भी खत्म हो चला है। शासन तंत्र में प्रवेश के लिए दरवाजा खटखटाने के वास्ते सबसे पहले डिग्रियों की जरूरत होती है। दरवाजा खोलने के लिए फिर दूसरी योग्यताएं आती हैं। शासन तंत्र में सरकारी नौकरी पाकर ही प्रवेश लिया जा सकता है। सुरक्षा, तरक्की तथा बेहतर वेतनमानों, तथा रिटायरमेंट के बाद भी पेंशन तथा अन्य सुविधाओं के कारण सरकारी नौकरी क्योंकर न लुभाए! शासन तंत्र में शामिल होना पुराने सामंती काल से ही शोषक होना होता आया है। सरकारी नौकरों की सामंती प्रवत्ति कर्मियों को बिना किसी नैतिक ग्लानि के भ्रष्ट करती है। सरकारी नौकरियों के जरिए शासन तंत्र में शामिल होने को लालायित लगों की भीड़ के पास वास्तव में काम का कौशल है या नहीं इसकी खबर उनकी डिग्रियां नहीं देती।

जिस प्रकार शासन तंत्र में राजनीति घुन की तरह लग गई है उसने विश्वविद्यालयों को भी नहीं छोड़ा है। देश में निजी विश्वविद्यालयों/शिक्षा-संस्थानों का जाल बिछाने में शिक्षा के सौदागरों के साथ राजनीतिक सत्ता, बाज़ार के खिलाड़ी और तथाकथित बुद्धिजीवियों की भूमिका भी रही है। सेलेब्रेटी विद्वानों के नाम और फोटो निजी विश्वविद्यालयों की वेबसाइटों और ब्रोशर्स में देखने को मिलते हैं। बहुतों को यह राजनीतिक सत्ता और निजी पूंजी के गठजोड़ का मामला लगता है। सत्ता में बैठे या सत्ता के नजदीक वाले राजनेता निजी पूंजी वाली ताकतों से जुड़ जाते हैं। इन विश्वविद्यालयों के लिये सस्ती ज़मीनें और प्रशासनिक सहूलियतें उपलब्ध कराई जाती हैं। ये सारी ज़मीनें किसानों-आदिवासियों को विस्थापित करके ली जाती हैं। स्मार्ट शहरों का सपना दिखाया जाता है विश्व-श्रेणी की शिक्षा का लालच दिया जाता है और आम जन इनकी बनाई मरीचिकाओं में भटक जाता है।

वे लोग जिन्होंने अपनी शिक्षा सार्वजनिक क्षेत्र के विश्वविद्यालयों में पाई और वहीं अपना पूरा कैरियर बिताया अवकाश प्राप्ति के बाद निजी विश्वविद्यालयों में जाने और वहां सेवा देने को आतुर दिखते हैं।

भारत में इस समय विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) से मान्यता प्राप्त करीब सवा चार सौ निजी विश्वविद्यालय हैं। इसके साथ देश में विदेशी विश्वविद्यालयों के तंत्र (नेटवर्क) भी पूर्ण क्षमता के साथ फैलना चाहते है। निजी क्षेत्र में पसरा शिक्षा का बाज़ार पहले मेडिकल, मैनेजमेंट, इंजीनियरी, आईटी, वाणिज्य, फैशन, मीडिया जैसे बाजारोन्मुख विषयों तक सीमित था। मगर जैसे-जैसे नवउदारवाद के तहत निजीकरण की प्रक्रिया तेज़ होती गई है, कानून समेत समाजशास्त्र और मानविकी के कई विषय भी इन विश्वविद्यालयों में पढ़ाए जाने लगे हैं। भारी-भरकम फीस वसूलने वाले विश्वविद्यालयों का दावा प्राय: 'नोन-प्रॉफिट संस्थान' होने का होता है। प्राकृतिक विज्ञानों को अभी शिक्षा के इस बाज़ार में प्राय: शामिल नहीं किया गया है। इसका कारण है सार्वजनिक क्षेत्र के विश्वविद्यालयों में इन विषयों की सीटें खाली रह जाती हैं। ज्यादा गहरा कारण यह है कि 'नए भारत' की रुचि केवल 'डिजिटल' में है; विज्ञान के दर्शन से उसने पल्ला झाड़ लिया लगता है।

शहरी इलाकों के पास के ग्रामीण इलाके तेजी से शहरीकरण की जद में आये हैं। इससे भूगोल ही नहीं बदला है बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक संबंधों पर भी उसका असर पड़ा है।

समाज, राष्ट्र और दुनिया की बेहतर रचना के लिए शिक्षा जैसे जरूरी और संवेदनशील विषय को बाज़ार की वस्तु बना दिया जाने पर बुद्धिजीवियों का ही ध्यान नहीं खींचता है, तो जननेताओं और नीति निर्माताओं को क्या दोष दिया जाए।

जैसे-जैसे राज्य और केंद्रीय विश्वविद्यालय बर्बाद होते जाएंगे, समाजशास्त्र और मानविकी के विषय पूरी तरह निजी विश्वविद्यालयों के हवाले होते जाएंगे। इस माहौल में इंफ्रास्ट्रक्चर और उपभोक्ता वस्तुओं की तरह बेशुमार विज्ञापन ही विश्व-स्तरीय शिक्षा मान ली जाने लगी है तो क्या आश्चर्य है? स्वतंत्रता सेनानियों और विचारकों, जिनमें कई गंभीर शिक्षाविद भी थे, ने कभी सोचा भी नहीं होगा कि भारत में शिक्षा का बाज़ार और बाज़ार के लिए शिक्षा का ऐसा बोलबाला होगा। एक बेहतरीन विश्वविद्यालय की रचना बातों से नहीं होती। इसके लिए वैसी भूमि तैयार करनी पड़ती है। ❑

प्रौद्योगिकी व समतापूर्ण शिक्षा की चुनौतियां

❑

❑

माधव चाव्हाण

देश में स्कूली शिक्षा पर सतत निगाह रखने वाली संस्था 'प्रथम' के सह-संस्थापक माधव चव्हाण इस आलेख में देश में प्रौद्योगिकी और समतापूर्ण शिक्षा की चुनौतियों को रेखांकित करते हुए एक नये रोडमैप की आवश्यकता बता रहे हैं। सं.

भारत में, 1990 और 2000 के दशक की शुरुआत में बड़े पैमाने पर शिक्षा गतिविधियों का दौर था। लेकिन उस अवधि के राष्ट्रव्यापी वार्षिक शिक्षा स्थिति रिपोर्ट (असर) सर्वेक्षणों के परिणामों में मिले नामांकन और बुनियादी ढांचे के संकेतकों ने स्कूलों की ओर लोगों का रुझान दिखाया, लेकिन सीखने के संकेतकों में कोई बदलाव नहीं दिखा। वह समय था जब कंप्यूटर, मोबाइल फोन और डिजिटल तकनीक ने धूम मचा दी थी। यह डिजिटल समाधानों और व्यवसायों के साथ कई संभावनाओं और वादों का समय था। यह वह समय भी था जब कोविड-19 महामारी ने ग्रामीण भारत में डिजिटल क्रांति को जमीन पर उतारा। असर डेटा में यह बहुत अच्छी तरह से दर्शाया गया है।

स्मार्टफोन का उपयोग और ग्रामीण परिवार 2018 में, लगभग 90 प्रतिशत ग्रामीण परिवारों के पास साधारण मोबाइल फोन थे और 36 प्रतिशत के पास स्मार्टफोन थे। 2022 में, स्मार्टफोन वाले घरों का अनुपात 74 प्रतिशत से अधिक हो गया। असर 2024 के अनुसार, इस वर्ष यह और बढ़कर 84 प्रतिशत हो गया है। घर पर स्मार्टफोन तक पहुंच रखने वाले बच्चों का प्रतिशत सेचुरेशन के करीब है। 14 से 16 वर्ष की आयु के बच्चों का अनुपात जिनके पास स्मार्टफोन है, एक वर्ष के भीतर 19 प्रतिशत से बढ़कर लगभग 31 प्रतिशत हो गया है। हालांकि असर डेटा से यह स्पष्ट नहीं है कि छोटे बच्चों की माताओं के पास अपना फोन है या नहीं। छोटे बच्चों की शिक्षा और उनके स्वयं के सीखने में सहायता करने के लिए स्मार्टफोन का यह स्वामित्व महत्वपूर्ण है। महामारी के दौरान स्मार्टफोन का मुख्य उपयोग टेक्स्ट, वर्कशीट और वीडियो के वाहक के रूप में था, जो पाठ्यपुस्तकों का विकल्प थे। वर्चुअल ट्रेनिंग सेशन भी आम हो गए थे। जैसे-जैसे महामारी दूर होती गई, इस अवधि के दौरान सीखे गए डिजिटल कौशल कायम रहे। हालांकि कुछ अभ्यास कम महत्वपूर्ण हो गए और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के इर्द-गिर्द एक नया उत्साह पैदा होने लगा।

मेरे अनुसार डिजिटल क्रांति का सबसे अच्छा वादा वंचितों के लिए